शरद् पूर्णिमा के महा ऋक्ष – महर्षि वाल्मीकि

डॉ. प्रवीण पण्ड्या
साँचोर, जिला- जालोर
राजस्थान

भारत की परम्परा में ऋषि एवं मुनि ये दो सत्ताएँ महत्ता के शिखर पर प्रतिष्ठित हुई। कोई व्यक्ति ऋषि बनता है 'किसी अकालबाधित' मन्त्र के दर्शन से। दर्शन साक्षात्कार होने से जीवन्त चेतना होती है। मुनि बनने के लिए आत्मसाधना के सूक्ष्मतम स्तरों से गुजरना होता है। रामायण के कवि वाल्मीकि महर्षि और मुनि दोनों ही थे। वह भृगु वंश की परम्परा, भार्गव ऋषियों की परम्परा के ऋषि थे। उनका नाम ऋक्ष था। ऋषि ऋक्ष वाल्मीकि नाम से जाने जाते हैं। उनकी कविता उनका मन्त्रदर्शन है। ऋषि-कवि की कविता होने से रामायण आर्ष काव्य है। वह आर्षकाव्य तो है ही, उसकी एक अतिरिक्त विशेषता उसका इतिहास होना है। महर्षि वाल्मीकि भारतीय समाज एवं संस्कृति के मूर्धन्य इतिहासकार हैं। उनके इस इतिहास (रामायण) में भारत के दिग्दिगन्तों का इतिहास सम्मिलित रूप में उपस्थित हुआ है। यह विभिन्न समाजों की निजी विशेषताओं एवं निजताओं के मध्य की ऐक्यधारा को अभिव्यक्ति देता है। एक प्रामाणिक ऐतिहासिक वृत्त को अप्रतिहत लेकर वाल्मीकि काव्य रचते हैं, तो इतिहास के समानान्तर वह उसमें आज तक असृष्ट, सूक्ष्मतम संवेदनशीलता (करुणा) को सर्वत्र अनुस्यूत करके मनुष्य को और अधिक मनुष्य बनाने का महान उद्यम करते हैं। वाल्मीकि की चेतना हमें आक्रमक होने से रोकती है। वह जीवन के प्रत्येक कदम पर सोच विचार करने को प्रेरित करती है।

यह विचारशीलता राम के अपने जीवन में है, उनके आस-पास के पात्रों में है। जहाँ नहीं है, वहाँ के अक्षम्य और क्रूर अन्याय की अनुभूति वाल्मीकि हमें करवाते हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र के भव्य- दिव्य रूप के साक्षात्कार करवाने के साथ- साथ वह तिरस्कार योग्य अभव्य और अदिव्य रूपों से हमें बचाते हैं। व्यक्ति को अपने आप से टकराना होता है और यह टकराहट उसे धर्मच्युत (कर्त्तव्य भ्रष्ट) कर सकती है। वाल्मीकि के इतिहासपुरुष राम के साथ केवल कोसल की समस्त जनता ही नहीं, अपितु अमात्यों एवं निगमप्रमुखों का बल भी था। यही नहीं, अपितु उनके साथ उनका अपना बड़ा सामर्थ्य है। वह उस शक्ति का उपयोग करके पिता को बंदी बना कर राज्य ले सकते थे, किन्तु वह पिता के वचन की रक्षा को अपने समस्त सुखों, वैभव और सुविधा से बड़ा मानते हैं। राम की महत्त्व बुद्धि का केंद्र स्वयं की तुच्छ सुविधाएँ नहीं है।

वाल्मीकि की चेतना की जीवन्त मूर्ति रामायण है। रामायण में वे मनुष्य को अमनुष्य बनाने वाले मानदण्डों को विसर्जित, विखण्डित करते हैं-

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥

सब प्रकार के संग्रहों की अंतिम स्थिति उनका विनाश है, सभी लौकिक उन्नतियों का अंतिम परिणाम पतन है, सभी प्रकार के संयोगों को अन्ततः वियोग में अनिवार्यतः बदलना होता है। प्रत्येक जीवन का चरम बिन्दु मौत है । व्यक्ति इन्हीं नश्वरों के लिए अपनी चेतना को संकुचित करता है। यह संकोच अपनी चादर को मैला करना है। जीवन को इस तरह आर-पार देखने एवं न्यायपूर्ण जीने की एक महान काव्यधारा को इतिहास के तटान्तों के बीच प्रवाहित करने वाले वाल्मीकि मानों स्वयं शरद ऋतु की पूर्णिमा पर पीयूषवर्ष चन्द्र के रूप में उदित होते हैं।

वाल्मीकि अपनी रामायण के रूप में आज भी हमारे मध्य में हैं। आरण्यक जीवन जीने वाले इस ऋषि ने जीवन के सत्य का दर्शन किया है। वनवासी जीवन को वह ऋषि और मुनि के धर्म के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वह नागरिक समाज की हड़पवृत्ति और आरण्यक समाज की त्यागवृत्ति को आमने सामने रखते हैं।

वाल्मीकि का रावण भी सिद्धांततः सहमत हैं कि धर्म (कर्त्तव्य निष्ठा) जीवन का मानदंड होना चाहिए। वह धर्म के प्रति जागरूक नहीं है, यह नहीं है। वह अपने अमर्ष (असहनशीलता) के कारण उससे पतित हो जाता है और विवेक के अनादर से पतिततम बन जाता है। रावण आलोचना करता है, कि राम अपने धर्म से भागा हुआ व्यक्ति है। तब मारीच ''रामो विग्रहवान् धर्मः'' कह कर उसका खण्डन करता है। धर्म अमूर्त्त तत्त्व है, उसका कोई बाहरी आकार नहीं हो सकता। मारीच कहता है कि राम साकार (विग्रहवान्) धर्म है। राम का जीवन धर्म की अभिव्यक्ति है। जहाँ धर्म अभिव्यक्त होता है, वहाँ वैभव, भोग और प्राप्तियाँ तिरस्कृत होती हैं। वहाँ अकिंचनता, त्याग और दान को महत्त्व-बुद्धि से देखा गया है। यही भारत की महत्त्व बुद्धि है।

रामायण कोसल आदि नागरिक समाजों का ही काव्य और इतिहास नहीं है। उसमें वनवासी वानरों, नरमांस-भक्षी राक्षसों आदि अनेक जातियों का इतिहास है। रामायण के भूगोल में आज का पूरा विश्व समाया हुआ है।

जीवन के कठिन क्षणों में किस तरह धैर्य रखना होता है और वहाँ किस सूक्ष्म विवेक को अपनाना होता है कि हम अपने अहंकार आदि की पुष्टि करके मूलकार्य को नष्ट नहीं कर दें, आदि को सामाजिक जीवन में राजनीति और वैयक्तिक जीवन में नीति कहा जाता है। यह नीति और राजनीति अपने बाहरी स्वरूप में कठोर हो सकती है, किन्तु संसार में पाप एवं अन्याय की शक्ति से स्वयं को बचाने के लिए उसे ढाल के रूप में प्रयोग करना रामायण बताती है।

एक उदाहरण अवश्य वाल्मीकि के रामायण में यथास्थान देखना चाहिए कि हनुमान् महान् वीर हैं, किन्तु वे अपनी शक्ति और सामर्थ्य के प्रयोग के लिए विवेक को नियन्ता का कार्य सौंपते हैं। अपने दूतकार्य की जो मीमांसा अशोकवाटिका में उन्होंने की है, वह अद्भुत है। वे कहते हैं कि डेढ़ होशियार दूत मूल काम को ही बिगाड़ देते हैं-

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः।।

यही हनुमान् एक अन्य स्थान पर राम के मंत्रियों के मन्तव्य के विपरीत अपना मत रखते हैं और एक नीति सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हैं, कि बिना नियोग के किसी का सामर्थ्य नहीं जाना जा सकता है। विचारपूर्वक नियोजन करना चाहिए। हाँ, आकस्मिक निर्णय दोषवान् होता है।

ऋते नियोगात् सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते।
सहसा विनियोगो हि दोषवान् प्रतिभाति मे।।

महाकवि भारवि इसी का अनुवाद अपने महाकाव्य में 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' के रूप में करते हैं। वाल्मीकि राक्षस एवं अराक्षस शील (चरित्र) का स्वरूप विभीषण के मुँह से कहलवाते हैं-

न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे।
(मैं न तो दारुण/क्रूरता से प्रसन्न होता हूँ और न अधर्म से प्रसन्न होता हूँ)
विभीषण इन क्रूरताओं में तीन विनाशक दोषों को गिनाते हैं-

1. परस्वानां च हरणं (दूसरों का हक चुराना)
2. परदाराभिमर्शनम् (दूसरों की स्त्री से जबर्दस्ती)
3. सुहृदामतिशङ्का च (दोस्तों, शुभ चिन्तकों पर अत्यन्त अविश्वास)

त्रयो दोषाः क्षयावहाः (ये तीन दोष विनाश करने वाले हैं।)

इन दोषों की राक्षसी वृत्ति आज भी हमें घेरे हुए है। हम यदि क्रूरता करके खुश होते हैं या कर्तव्य (परिवार, समाज, व्यवसाय के प्रति) से जी चुरा कर खुश होते हैं तो वह अपने आपको राक्षस बनाना है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति कितना मनुष्य रह जाता है और कितना अमनुष्य हो जाता है, कहना कठिन है। वाल्मीकि की कविता और उनका मन्त्र इसी की ओर विवेक जगाता है।